'काव्यानुशासन', जयदेव (१२००-१३०० ई०) का 'चन्द्रालोक', भानुदत्त (१३००-१४०० ई०) की रसतरंगिणी, विद्याधर (चतुर्दश शतक) की 'एकावली', दूसरे विद्याधर (१४०० ई०) का 'प्रतापरुद्रीयमयशोभूषण', वाग्भट्ट द्वितीय (१४८० ई०) का 'काव्यानुशासन', विश्वनाथ (१४७५-१५२५ ई०) का 'साहित्यदर्पण', रूप गोस्वामी (१५०० ई०) 'उज्ज्वलनीलमणि', अप्पयदीक्षित (१५५४-१६२६ ई०) का 'कुवलयानन्द', पण्डितराज जगन्नाथ कृत 'रसगंगाधर', विश्वेश्वर पण्डित का 'अलङ्कार-कौस्तुभ' अलंकार-शास्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इनमें अलंकार शास्त्रीय समस्त तत्त्वों का गम्भीर निरूपण किया गया है।

दर्शन-शास्त्र के भी संस्कृत-साहित्य में सहस्रों ग्रन्थों का सृजन हुआ है, विस्तार भय से उनका यहाँ उल्लेख सम्भव नहीं है।

अर्थशास्त्र एवं राजनीति विषय पर कौटिल्य का अर्थशास्त्र अभूतपूर्व रचना है। व्यापक परिवेश में जीवन सम्बन्धी समस्त तत्त्वों का इसमें निरूपण किया गया है। 'कामन्दकीय नीतिसार (७वीं शती) तथा शुक्रनीति आदि परवर्ती रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं।

गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में भी आर्यभट्ट (४७६ ई०), वराहमिहिर (षष्ठ शतक), ब्रह्म गुप्त (५९८ ई०), भास्कराचार्य (१११४ ई०) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

चिकित्सा के क्षेत्र में चरक की 'चरक-संहिता' कनिष्क काल की है। सुश्रुत की 'सुश्रुत संहिता' चतुर्थ शतक की है। वाग्भट्ट का अष्टांगहृदय (सप्तम शतक), चक्रपाणिदत्त (११वीं शती) का 'चक्रदत्त', माधव का 'माधव निदान' आदि विशिष्ट ग्रंथ हैं, जिनमें चिकित्सा सम्बन्धी सूक्ष्म चिन्तन देखने को मिलता है।

यह है भारतीय प्राचीन साहित्य की एक संक्षिप्त रूपरेखा। इस विशाल साहित्य की इस संस्कृति के ग्रन्थ में एक रूपरेखा ही दी जा सकती है। इस रूपरेखा के माध्यम से ही प्राचीन भारत की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का आभास मिल जाता है। संस्कृत साहित्य का विस्तार विशद् है, क्योंकि हम देखते हैं कि विचाराभिव्यक्ति के विविध रूपों—कविता, कथा, नाटक, गद्य, ज्ञान-विज्ञान सभी के ऊपर भारतीयों ने लेखनी चलाई है, जोकि यहाँ की प्रतिभा का परिचायक है। इसमें प्राचीन-भारत का बौद्धिक चिन्तन सर्वतोभावेन देदीप्यमान हो रहा है।

भारतीय शिक्षा-संस्थाएँ

वैदिक युग में महान् ऋषियों के आश्रम ही उनकी शिक्षा संस्थायें थीं, इनमें दूर-दूर से विद्यार्थी विद्या-उपार्जन के लिए आया करते थे। उस काल में ये आश्रम ही वास्तविक शिक्षा के केन्द्र थे। उदाहरण के लिए कण्व आश्रम, मारीचि आश्रम, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि आचार्यों-ऋषियों के आश्रमों का यत्र-तत्र संस्कृत साहित्य में उल्लेख मिलता है। नैमिषारण्य (सीतापुर) आचार्य शौनक का प्रसिद्ध आश्रम था।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु-गृह, गुरुकुल तथा आश्रम ही इस काल के प्रमुख शिक्षा केन्द्र थे, जहाँ विभिन्न शास्त्रों का सांगोपांग अध्ययन-अध्यापन किया जाता था। इस काल में व्यावहारिक शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया जाता था।

बौद्ध-युग में गुरुकुलों और आश्रमों का स्थान बौद्ध-विहारों ने ले लिया और यह आश्रम व्यवस्था धीरे-धीरे इन विहारों में रूपान्तरित हो गई। इन विहारों में बौद्ध-धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मों के व्यक्ति भी अध्ययन करने के लिए आया करते थे। इस काल में बौद्ध-धर्म में भिक्षु-भिक्षुणियों को शिक्षित करने का उपक्रम उनके विहारों में प्रवेश काल से ही प्रारम्भ हो जाता था। इस प्रकार ये बौद्ध-विहार ही शिक्षा-केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

जातक साहित्य का सर्वेक्षण करने पर विदित होता है कि प्राचीन भारत में अनेक शिक्षा-केन्द्र थे, जिनमें निम्न अधिक प्रसिद्ध थे—तक्षशिला, काशी, राजगृह, नालन्दा, बलभी, मिथिला, विक्रम। किन्तु इन शिक्षा-केन्द्रों में तीन प्रमुख थे—

तक्षशिला,
नालन्दा,
विक्रम शिला।

तक्षशिला

प्राचीन भारत का सर्वाधिक पुरातन शिक्षा-केन्द्र तक्षशिला (रावलपिंडी के निकट) था। कहते हैं कि इसकी स्थापना भरत ने की थी और भरत का पुत्र 'तक्ष' उसका प्रथम कुलपति था। महाभारत में उल्लिखित जनमेजय के नागयज्ञ का यही स्थान था। रामायण-महाभारत जैसे ग्रन्थों में इसका उल्लेख शिक्षा-केन्द्र के रूप में नहीं है किन्तु ई० पू० सप्तम शतक में यह स्थान विशिष्ट विद्या-केन्द्र के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका था। इसलिए यहाँ राजगृह, बनारस और मिथिला जैसे दूरस्थ प्रदेशों से विद्यार्थी आया करते थे। किन्तु ई० पू० में ईरानी, शक, कुषाण, हूणों के निरन्तर होने वाले आक्रमणों ने इस विश्वविद्यालय को नामशेष कर दिया था, इसीलिए फाहियान ने इस स्थान का अपने विवरण में उल्लेख नहीं किया है। किन्तु उत्खनन के समय इस स्थान से प्राप्त "बर्त्तन-भाड़े, दावात, थाली, लोटा, हीरक-हार, कसौटी पत्थर, मटके आदि अनेक वस्तुयें प्राप्त हुई हैं" जो उस समय की सभ्यता तथा शिक्षित समाज की ओर संकेत करती हैं। "तक्षशिला के उस महान् विश्वविद्यालय के स्थान पर अब खण्डहर तथा वीरान स्थान है। इसके खण्डहर जौलियाँ, पिपला, जांडियाल तथा रिचस्तूप आदि स्थानों के थोड़ी ही दूर पाये जाते हैं। इसकी खुदाई से यह भी पता चला है कि तक्षशिला में ब्राह्मण, बौद्ध-दर्शन, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि पर अनेक ग्रंथ लिखे गए। अतः यह विश्वविद्यालय भारत की समृद्धि-शालिनी सभ्यता का महान् प्रतीक है।"[1]

Scanned with CamScanner

तक्षशिला यद्यपि शिक्षा-केन्द्र था किन्तु उसका स्वरूप किसी विश्वविद्यालय की भाँति नहीं था, न तो वहाँ कोई निश्चित शिक्षाकाल था, न उपाधियाँ थीं, न कोई पाठ्यक्रम; अपितु वहाँ जगत प्रसिद्ध (दिसापामोक्ख) विद्वान् रहते थे, जोकि स्वतन्त्र रूप से विद्यादान देते थे, उनकी कीर्ति से आकृष्ट होकर दूर-दूर से विद्यार्थी विद्यार्जन के लिए आते थे। भगवान् बुद्ध का चिकित्सक सात वर्ष तक वहाँ विद्यार्जन करता है। विद्यार्जन करने के पश्चात् उसकी द्रव्यगुण में क्रियात्मक परीक्षा भी ली गई थी—"यह खुरपी लो और तक्षशिला के चारों ओर एक योजन तक घूम आओ, तुम्हें जो भी पौधा ओषधि के काम का न जान पड़े, उसे ले आओ।" जीवक तदनुसार उस प्रदेश में घूम आये किन्तु उन्हें कोई भी ऐसा पौधा न मिला जो ओषधि के काम का न हो। यह बात उसने अपने गुरु से कही और गुरु अपने शिष्य के ज्ञान से सन्तुष्ट हुए और उन्हें घर जाने की आज्ञा प्रदान की।

तक्षशिला में कौटिल्य राजनीति के तथा भृत्यकौमारजीव जैसे शल्य-चिकित्सक अध्यापक थे। पाणिनि भी अटक के पास 'शालापुर' ग्राम के निवासी थे। सम्भवतः उन्होंने वहाँ विद्यार्जन किया हो और उसके पश्चात् अध्ययन-कार्य भी।

शालातुर

नालन्दा

प्राचीन भारत का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नालन्दा पटना के दक्षिण-पश्चिम चालीस मील दूर आधुनिक बडगाँव में था जोकि राजगृह से आठ मील है। 'नालन्दा विश्वविद्यालय वास्तव में उस समय विश्व का ज्ञान-पीठ था और इसी ने उस समय जगत् को भारतीय ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, कला तथा दर्शन का ज्ञान प्रदान किया था। यहाँ के स्नातक विश्व में ख्याति प्राप्त करते थे। बौद्ध-काल में यहाँ चीन, जापान, तिब्बत, श्याम, बर्मा आदि के विद्यार्थी विद्यार्जन के लिए आया करते थे। चीनी-यात्री ह्वेनसांग ने यहाँ शिक्षा प्राप्त की थी, उसने उसकी महत्ता का भव्य-वर्णन किया है। उसने लिखा है कि भारत में शिक्षा की हजारों संस्थाएँ थीं पर कोई भी नालन्दा के मुकाबले भव्य न थी। १० हजार विद्यार्थी न केवल बौद्ध-साहित्य की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन करते वरन् वे वेद (अथर्ववेद भी), तर्कशास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद, सांख्य, दर्शन आदि भी पढ़ते थे। प्रतिदिन १०० आसनों से शिक्षायें दी जाती थीं। राजाओं की कई पीढ़ियों की उदारता के फलस्वरूप न केवल यहाँ निवास और व्याख्यान के भव्य-भवन बनाये गये थे, वरन् गुरु और शिष्यों की इतनी बड़ी संख्या की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति भी की जाती थी। १०० गाँवों की आय इस कार्य में व्यय होती थी और इन गाँवों के २०० परिवार उनकी दैनिक आवश्यकताओं की बारी-बारी से पूर्ति करते थे। चीनी यात्री ने ठीक ही लिखा है कि "इन्हीं कारणों से विद्यार्थियों को यहाँ इतना अधिक मिलता है कि उन्हें चारों आवश्यकताओं—कपड़ा, खाना,

Scanned with CamScanner

बिस्तर और दवा—के लिए किसी से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती। यही उनकी शिक्षा की पूर्णता का रहस्य है।"[1]

ह्वेनसांग नालन्दा की शिक्षा-पद्धति के सम्बन्ध में लिखता है कि "गम्भीर प्रश्नों के पूछने और उत्तर देने के लिए पूरा दिन भी पर्याप्त नहीं पड़ता। प्रातःकाल से रात्रि तक लोग वाद-विवाद में लगे रहते हैं। बूढ़े और जवान एक दूसरे की सहायता करते हैं।"

ह्वेनसांग के अनुसार नालन्दा विश्वविद्यालय के शिक्षक एवं शिक्षार्थी 'उच्चतम योग्यता और मेधा के व्यक्ति होते थे। नालन्दा से शिक्षा-प्राप्त विद्यार्थी जहाँ भी जाते थे, वहाँ उन्हें सम्मान प्राप्त होता था। एशिया के शिक्षा-क्षेत्र में नालन्दा सदा ही आदर्श शिक्षक का कार्य करता रहा है।

नालन्दा विश्वविद्यालय में १०००० छात्र तथा १५०० अध्यापक थे। इस अध्यापक मण्डल में धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, धर्मकीर्ति, शान्तरक्षित और पद्मसम्भव जैसे प्रतिभावान अध्यापक थे। शीलभद्र प्रधानाध्यापक थे। इस विश्वविद्यालय में ८ हॉल तथा ३०० छोटे-छोटे कक्षा-कक्ष थे। अनेक मठ थे। 'रत्नसागर', 'रत्नोदधि' तथा 'रत्नरंजक' नामक तीन सरस्वती मन्दिर (पुस्तकालय) थे इनकी इमारतें नौ मंजिल तक थीं। विभिन्न सम्प्रदायों से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ इन पुस्तकालयों में सुरक्षित थे।

इन इमारतों के सम्बन्ध में ह्वेनसांग ने लिखा है कि "जो सभी कई मंजिल की थीं, लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई की दृष्टि से अत्यन्त भव्य थीं, इनमें अत्यन्त सुसज्जित मीनार तथा बुर्जियाँ थीं, जैसी परियों की कहानियों में होती हैं, जो दूर से देखने में नुकीले पर्वत शिखरों जैसी लगती थीं, और प्रातःकाल के कुहरे में छिपी रहने वाली वेधशालाएं थीं। ऊपर के कमरे बादलों में अपना मस्तक ऊँचा किये हुए दिखाई देते थे और उनकी खिड़कियों से हवाओं का वेग और नित नया रूप धारण करते हुए बादल तथा उनके अलिन्दों से सूर्यास्त का सौन्दर्य तथा ज्योत्स्ना का नयनाभिराम दृश्य देखा जा सकता था।"[2] ह्वेनसांग तथा उनके चरित्र के लेखक ह्वुईली ने नालन्दा के सौन्दर्य के सम्बन्ध में लिखा है—"और फिर हम इसका भी उल्लेख कर सकते हैं कि निर्मल जल से भरे हुए गहरे सरोवरों के धरातल पर नीलकमल तैरते रहते हैं जिनके बीच-बीच में गहरे लाल रंग के कमल के फूल अपनी छवि दिखाते हैं और थोड़ी-थोड़ी दूर पर आम्रकुंज अपनी छाया से भूमि को ढक लेते हैं। बाहर के सभी प्रांगण, जिनमें पुरोहितों के कक्ष बने हुए हैं, चार मंजिले हैं। हर मंजिल पर अजगर की शक्ल में कटे हुए पत्थर बाहर को निकले हुए हैं और रंग-बिरंगे अलिन्द बने हैं; मूँगे जैसे लाल स्तम्भों पर अत्यन्त सुन्दर बेल-बूटों की नक्काशी है,

Scanned with CamScanner

उन इमारतों में अत्यन्त सुन्दर तथा सुसज्जित जंगले तथा कटहरे हैं और छतों पर ऐसे चौके लगे है जिनसे प्रकाश हजारों अलग-अलग रंगों में प्रतिबिम्बित होता है। इन सब चीजों के कारण यहाँ के सौन्दर्य को चार चाँद लग जाते थे।"[१]

नालन्दा विश्वविद्यालय बौद्ध-महायान पंथ का प्रमुख शिक्षा-केन्द्र था, अतः यहाँ प्रवेशार्थी छात्रों की संख्या अत्यधिक थी, इसलिए इस विद्यालय के प्रवेश नियम कठोर थे। प्रत्येक प्रवेशार्थी की परीक्षा ली जाती थी। ह्वेनसांग ने लिखा है—

"यदि बाहर के लोग वहाँ प्रवेश पाने और शास्त्रार्थ में भाग लेने की इच्छा से आते हैं तो द्वारपाल उनके सामने कुछ कठिन प्रश्न रखता है; बहुत से लोग इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाते और वापस लौट जाते हैं। यहाँ प्रवेश पाने से पहले पुरातन तथा नूतन दोनों ही (ग्रन्थों) का गूढ़ अध्ययन आवश्यक है। इसलिए जो विद्यार्थी यहाँ नवागंतुकों के रूप में आते हैं, उन्हें कठिन वाद-विवाद में भाग लेकर अपनी योग्यता सिद्ध करनी पड़ती है, यदि सात या आठ लोगों को इसमें असफलता प्राप्त होती है तो दस लोग सफल भी हो जाते हैं। इन सात या आठ में से दो या तीन, जिनकी योग्यता साधारण होती है, सभा में शास्त्रार्थ के लिए पहुँचने पर निश्चित रूप से असफल सिद्ध होते हैं और अपनी ख्याति से हाथ धो बैठते हैं।"[२]

नालन्दा विश्वविद्यालय अष्टम-शतक में अपने चरमोत्कर्ष पर था, इसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति इस काल में मिल गई थी, तथा यह बारहवीं शताब्दी में तुर्कों के आक्रमण के द्वारा नामशेष हो गया। प्राचीन भारत का विद्यार्थी जब तक इस विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त नहीं कर लेता था, तब तक स्वयं वह अपनी शिक्षा को अपूर्ण मानता था।

वलभी—जिस प्रकार पूर्व में नालन्दा विश्वविद्यालय की प्रसिद्धि थी, उसी भाँति पश्चिमी काठियावाड़ में स्थित वलभी की प्रसिद्धि थी। चीनी यात्री इत्सिङ्ग ने वलभी शिक्षा केन्द्र का विस्तार से वर्णन किया है। वह यहाँ दो-तीन वर्ष तक रहा था। वलभी में भारतवर्ष के विद्वान सिद्धान्तों पर विचार करने के लिए एकत्र हुआ करते थे। वलभी में एकत्र विद्वान् जिस पंडित के सिद्धान्तों को स्वीकार करते थे, अथवा जिसकी बुद्धिमता की प्रशंसा करते थे, उसे प्रसिद्धि शीघ्र ही मिल जाती थी। गंगा के मैदान तथा उत्तर भारत से अनेक व्यक्ति वलभी शिक्षा प्राप्त करने जाते थे। वलभी से शिक्षा प्राप्त व्यक्ति उच्च पदों पर नियुक्त होता था। वलभी बौद्धधर्म का केन्द्र होने पर कानून, अर्थशास्त्र, गणित और साहित्य जैसे विषयों का भी शिक्षा केन्द्र था। लगभग ७७५ ई० में अरबों के आक्रमण के कारण यह विद्यालय नष्ट हो गया।

विक्रमशिला—विक्रमशिला बिहार प्रान्त के भागलपुर जिले में स्थित था।

Scanned with CamScanner

इस विश्वविद्यालय की स्थापना पालवंशी राजा धर्मपाल ने अष्टम शतक में की थी। इस विश्वविद्यालय ने अपनी विशेषताओं के कारण शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करली। विक्रमशिला के प्रतिष्ठा-प्राप्त प्राध्यापकों की एक लम्बी तालिका है। इस विश्वविद्यालय का विशेष सम्बन्ध तिब्बत से था। इस विश्वविद्यालय में अध्ययन करने आने वालों में तिब्बतियों की विशाल संख्या रहती थी, इसलिए उनके लिए इसमें एक विशिष्ट अतिथिशाला भी थी। विक्रमशिला के सम्बन्ध में हमें विभिन्न आधारों से जानकारी मिली है, उसके सम्बन्ध में श्री गोखले लिखते हैं—

"उन महापुरुषों की जीवनियों में, जिन्होंने यहाँ विद्या लाभ किया और यहाँ के उन विद्वानों के जीवन-चरित्र स्वर्णअक्षरों में अंकित हैं, जिन्हें विदेशों में, मुख्यत: तिब्बत में ज्ञान, संस्कृति तथा धर्म के प्रचार के लिए आमन्त्रित किया गया। इनमें से कुछ विद्वानों के वृत्तान्तों में हमें उनके विश्वविद्यालय के इतिहास की कुछ झलकियाँ मिलती हैं। सचमुच, विद्या के केन्द्र के रूप में विक्रमशिला की सफलता का प्रचुर प्रमाण इस बात में मिलता है कि उसने बहुत बड़ी संख्या में प्रतिभाशाली विद्वान् पैदा किये, उसने विलक्षण तथा धर्मात्माओं को जन्म दिया, जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा ज्ञान तथा धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिये और उनके इसी योगदान के आधार पर तिब्बत जैसे एक पूरे देश की सभ्यता तथा संस्कृति का वस्तुत: निर्माण हुआ। तिब्बत ने बड़ी कृतज्ञता के भाव से विक्रमशिला के कुछ स्नातकों की स्मृति को सुरक्षित रखा है और उनमें से कुछ को वहाँ धर्मगुरु के पद पर बिठा दिया गया है।"[१]

ओदांतपुरी का विश्वविद्यालय भी पालवंशी राजाओं के द्वारा विकास प्राप्त हुआ। इस विश्वविद्यालय की स्थापना अष्टम-शतक में गोपाल नामक राजा ने की थी। इस विश्वविद्यालय में तांत्रिक-साहित्य का विशेष रूप से अध्यापन कार्य होता था। यह विश्वविद्यालय पाटलीपुत्र के निकट स्थित था।

जागद्दल विश्वविद्यालय इन महान् विश्वविद्यालयों में अन्तिम था। इसकी स्थापना बंगाल के राजा रामपाल ने की थी। इसका अस्तित्व केवल एक शताब्दी तक ही रहा। इसकी स्थापना बारहवीं शताब्दी में हुई थी तथा इसको विनष्ट भी विदेशी आक्रमणकारियों ने किया था।

बनारस भी भारत का प्राचीन शिक्षा-केन्द्र रहा है। इसे अधिक महत्त्व अशोक तथा उसके पश्चात् सारनाथ को अधिक महत्त्व मिलने पर प्राप्त हुआ है। अन्यथा ई० पू० सप्तम सतक में बनारस के राजाओं का तक्षशिला विद्याध्ययन करने जाने का उल्लेख मिला है। हिन्दू धर्म का महत्त्वपूर्ण तीर्थ होने के कारण बनारस (काशी) संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा है।

Scanned with CamScanner